गूजरात विद्यापीठ ग्रन्थावली — पु० १४८

गांधीजीकी जीवनदृष्टि

(विद्यापीठके सत्रहवे पदवीदान समारोहपर कुलपतिजीके अलग अलग अवसरपर दिये हुए भाषण)

मोरारजी देसाई

गूजरात विद्यापीठ
अहमदाबाद-१४

प्रकाशकका निवेदन

स्व० राजेन्द्रबाबू जब कुलपति थे तो कई कारणोंसे वे विद्यापीठके पदवीदानके लिए हर साल नहीं आ सकते थे। उनके अवसानके बाद विद्यापीठ मंडलने श्री मोरारजीभाई देसाईसे इस पदको स्वीकार करनेकी विनती की। उन्होंने विद्यापीठ मंडलकी विनतीको, और आये वर्ष पदवीदानके लिए आना स्वीकार किया। गुजरात विद्यापीठको युनिवर्सिटीका दरजा मिल जानेमें पदवीदान आये वर्ष हो यह आवश्यक हो गया, और इस कार्यके लिए विद्यापीठका स्थापना दिन ता १८ अक्तूबर तय हुआ।

कुलपतिजीसे अनुरोध किया गया कि वे पदवीदानके अवसर पर कुछ दिन विद्यापीठ-कुलके साथ रहे, तो आजकलकी परिस्थितिमें उनका विद्यापीठमें ठहरना विद्यार्थियों और सेवकोंके लिए बड़ा लाभदायी होगा। कुलपतिजीने यह बात स्वीकार की, और ता. १५-१०-६४ से २२-१०-६४ तक वे यहाँ रहे।

उनसे कहा गया कि बापूकी जीवनदृष्टिके बारेमें वे शामकी प्रार्थनाके समय कुछ कहे तो इसका प्रभाव विद्यापीठ कुल पर अच्छा पड़ेगा। उन्होंने यह बात मान ली; और शामकी प्रार्थनामें चार दिन तक मननीय व्याख्यान दिये।

ये व्याख्यान पदवीदानके अवसर पर और सप्ताहके निवास बीच अनेक प्रसंगों पर दिये गये थे। उनकी उपयोगिता देखकर गुजरातीमें एक पुस्तिकाके रूपमें श्री. मोहनभाई पटेलने संपादित कर उन्हें प्रसिद्ध किया था। उस पुस्तिकामें से बापूकी जीवनदृष्टि

पर दिये चार व्याख्यान और पदवीदानके अवसर पर स्नातकोंको दिये गये आदेशका हिन्दी अनुवाद जो श्री निर्मलाबहन परळीकरने किया है उसे हिन्दी जाननेवालोंके लाभार्थ प्रकट किया जा रहा है।

आजकल बापूकी विचारसरणी समझने और उसे अपनानेकी देशको बड़ी जरूरत है। आशा करता हूँ कि ये व्याख्यान बापूकी जीवनदृष्टि समझने और उस पर चलनेके लिए उपयोगी होंगे।

अहमदाबाद,

ता० १६-१०-१९६५

रामलाल परीख

अनुक्रमणिका

गांधीजीकी जीवनदृष्टि

१

बहनो और भाइयो,

महादेवभाईने तय किया है कि इन दिनोंमें गांधीजीकी जीवनदृष्टिके बारेमें मैं कुछ कहूँ। सो आज हम गांधीजीकी जीवनदृष्टिके बारेमें सोचेंगे। मुझे लगता है कि हमारे दिलमें बात साफ हो जानी चाहिये। हम उनकी जीवनदृष्टि सिर्फ ऐतिहासिक दृष्टिसे ही समझना चाहते हैं या हम अपने जीवनको जाँचकर उस दृष्टिको अपने जीवनमें सिद्ध करना चाहते हैं।

मुझे खुदको लगता है कि बापूजीने हिन्दुस्तानको जो नवजीवन दिया वह नवजीवन हमें हमेशाके लिए सँभलना है। हमें बहुत बार ऐसा लगता है कि बापूकी बातें भूली जा चुकी हैं, अथवा भूली जायेंगी और भविष्यमें उन पर अमल नहीं होगा। लेकिन मैं मानता हूँ कि इस तरह संदेह करना उचित नहीं।

हम जो प्रार्थना करते हैं वह प्रार्थनाके तौर-पर कुछ नई चीज नहीं है। हिन्दुस्तानमें और दुनियाके दूसरे विभागोंमें जो लोग धर्मको मानते हैं वे सब प्रार्थनाको भी मानते हैं और प्रार्थना करते ही रहते हैं; मगर अलग अलग तरहसे। जो प्रार्थना हमने की उसका तरीका बापूने हमें बताया है। प्रार्थना क्यों करनी चाहिये, किस तरहसे करनी चाहिये, उसका महत्व क्या है ये सब बातें बापूने हमें जरा साफ़ तौरसे समझाई हैं। उन्होंने प्रार्थनाको बहुत व्यापक स्वरूप दिया है।

यदि आदमी यह समझे कि वह जो कुछ करता है वह अपनी ही ताक़तसे करता है तो वह ठोकर खाता है और जीवनको कुछ उलटे रास्तेपर ले जाता है। आदमी कितना भी सोचे, कितना भी आयोजन करे और कितनी भी मेहनत करे फिर भी ईश्वरके प्रति

सहता सभी मगर उसका काम नहीं करेगा। यह सृष्टि प्रकृति (ईश्वरी नियम) आधारपर ही चलती है। इसलिए आदमीको प्रकृतिके अनुसार ही चलना है। इस सत्यमें प्रार्थनाकी और उसका महत्व समझमें आता है। जितना आदमी प्रकृतिके अनुसार चलेगा उतना ही उसे फल मिलेगा। इसीमें से प्रार्थनाका जन्म हुआ। आदमी प्रार्थना करे और कहलाए, नियमोंका आश्रय ले तो वह बहुतसी मुश्किलोंसे बच जाता है, यह आजतकका अनुभव है। आदमी प्रार्थना करता है तब वह इस नियमकी शरण लेता है।

ईश्वर और उसका नियम दोनों एक हैं। जब आदमी उसकी शरण लेता है तब उसकी मर्यादित शक्ति अमर्यादित हो जाती है। उस अमर्यादित शक्तिको पहचाननेके लिए हमें प्रार्थना करनी चाहिये न कि उस अमर्यादित शक्तिद्वारा चिजोंको मांगना चाहिये।

बापूने समूह प्रार्थना इसलिए शुरू की, कि थोड़े समयके लिए भी एक ऐसा वातावरण हो जाय कि जिसमें आदमी आदमीके बीचका भेद भूल जाय, और हम एकदूसरेसे जो एक धागेसे बंधे हुए हैं उसे पहचान लें। यदि ऐसी प्रार्थना ठीक तरहसे की जाय तो वह एक शक्ति है। इसलिए प्रार्थना शांत, एकचित्त, और एकाग्र मनसे करना जरूरी है। प्रार्थनाके समय दूसरे विचारोंको मनसे निकालकर आदमीके ईश्वराभिमुख होनेसे जो शांत वातावरण उत्पन्न होता है, और उससे जो अद्‌भुत शांति प्राप्त होती है उसका हम अनुभव कर सकते हैं। इसका मतलब यह नहीं कि उसी समयकेलिए ही प्रार्थना शान्ति प्राप्त करनेका साधन है। दिनके सब कामोंमें हम ईश्वरको याद करते रहें तो विकारोंके वश होनेका कोई कारण ही नहीं रहता। आदमीके तौरपर हमारा जो कर्तव्य है उसका खयाल वह हमें देता ही रहता है और दिनभर हम शान्तिका अनुभव करते रहते हैं।

इस तरहकी प्रार्थना करनेसे ही आदमीको शक्ति मिलती है, इस तरह न हो सके तो क्या प्रार्थना न की जाय? शुरूशुरूमें नहीं हो सकते, लेकिन धीरे धीरे हम आगे बढ़ सकते हैं। लीन नहीं होता इसलिए प्रार्थना नहीं करनी, यह ठीक

नहीं। थोड़े समयकेलिए भी हम उसे याद न करे यह ठीक नहीं है। इसीलिए हिन्दूधर्ममें त्रिकाल (तीनों वक्त) सध्याकी जरूरत महसूस की है और इस्लाममें पाच बार। यह इसलिए कि दिनमें थोड़े थोड़े समयपर आदमी प्रार्थना करता रहेगा तो समय बीतनेपर वह प्रार्थनामय हो जायेगा। बापूने जब जब अपने जीवनमें उलझनें महसूस की तब उन्हें प्रार्थनामेंसे ही शक्ति मिली यह उन्होंने बारबार कहा है।

बापूकी जीवनदृष्टिके बारेमें बहुत स्पष्टता करनेकी जरूरत है, यह मै नहीं मानता। उनका जीवन इतना स्पष्ट और सरल रहा है कि जो कोई देखना चाहे वह उसे साफ तौरसे देख सकता है। लेकिन हमारा अपना मन उलझनोमें फँसा हो, हम खुद दुविधामें हो तो उनमें भी ऐसी ही दुविधा हमें दिखाई देगी। हमारे देशमें अनेक ऋषि हो गये, जिन्होंने हमें धर्म दिया, जिन्होंने हमारी सस्कृति उज्जवल और सपन्न बनाई और उसे इतना ऊँचा उठाया कि आज दुनिया उसकी कद्र करती है। उन्होंने हमें जो बातें बताई वे दुनियासे अलग रहकर, सन्यासी होकर कही। लोग उनके अनेक अर्थ करते हैं। उनके लिखे हुए सूत्रोंके अनेक भाष्य होते हैं, जिनमें हम उलझ जाते हैं। इससे मूल बात हम भूल जाते हैं। बापूने सामान्य जीवन जीते जीते हमारी सस्कृतिका सार निकाला और इस तरह जीवन जीनेका एक प्रयोग दुनियाके सामने रखा। खुद न कर सके ऐसी एक भी बात बापूने दुनियासे नहीं कही, फिर भी उन्होंने कहा कि यदि मेरी बात ठीक न लगे तो आपको जो सत्य लगे, उचित लगे उसके मुताबिक आप बरतें। लेकिन इसी तरह बरतते हुए हमें एक दूसरेकी सहायता करनी चाहिये न कि हम अंतरायरूप हों; यह बात उन्होंने बताई।

जबसे दुनिया रची गई तबसे आदमी आदमीके सबंधोमें दो दृष्टिकोण रहे हैं। एक है 'शठम् प्रति शाठयम्' जैसेके साथ तैसा। कुछ धर्मोंमें बताया गया है कि आंखके बदले आँख और जीवके बदले जीव लेना चाहिये। दूसरी बात है 'शठम् प्रति अपि सत्यम्,' हमारा जिसने बिगाड़ा है उसका भी हम भला करें, जिसने हमारे साथ बुराई की हो उसके साथ भी हम भलाई करें। यह

दृष्टिकोण आदमीको अहिंसाके रास्तेपर ले जाता है, और उससे ही सत्यका साक्षात्कार करनेका अवसर मिलता है। सत्यको प्राप्त करना यानी ईश्वरको प्राप्त करना।

यदि शुद्ध साधनोंका उपयोग नहीं होगा तो आप कितना भी प्राप्त करें आपका उद्देश्य सफल नहीं होगा। शुद्ध साधन, इसका क्या अर्थ है? वह साधन सत्य और अहिंसापर रचा हुआ हो। यदि ऐसा नहीं होगा तो साध्य दूषित होगा। हम अपने लिए अच्छी इच्छा करें, तो दूसरेके लिए भी उसी तरह करें। किसीको हानी पहुँचाकर हम अपना भला नहीं कर सकते। अपने सुखको छोड़ कर भी हमें दूसरेके दुःखको दूर करना चाहिये यह वापूने हमें सिखाया है। उन्होंने तो जीवनभर उसपर आचरण किया है।

राजनीतिमें भी वापूने यह वात की यह नई वात है। गांधीजीने जो जो वातें दुनियाके सामने रखी हैं उनमें से एक भी नई नहीं है यह उन्होंने एक वार कहा भी है। जो रीत अनादिकालसे हमारे यहाँ चली आई है उसपर उन्होंने ठीक तौरसे चलकर वताया है। लेकिन एक वात उन्होंने नई वताई वह यह है: सत्य और अहिंसाका आचरण जीवनमें अलग अलग ढंगसे नहीं हो सकता, जीवनके टूकड़े नहीं हो सकते। वह एक समग्र और अखिल वस्तु है। शुद्ध साधना तो हर अवसरपर होनी चाहिये फिर चाहे सामाजिक अवसर हो, आर्थिक अवसर हो या राजकीय अवसर हो। अव तककी राजनीतिमें 'कुछ भी चल सकता है' यह नियम स्वीकार होता आया है। महाभारतके शांतिपर्वको पढ़ें तो उसमें और आज जो कुछ है इसमें कुछ भी फ़र्क़ दिखाई नहीं देता। सव प्रकारके साधनोंका उपयोग करके राज्य चलायें। इससे ही राजनीतिमें शामिल होनेवालोंके लिए लोगोंमें विश्वास नहीं रहता। वे सच वोलेंगे यह श्रद्धा जनतामें नहीं होती। इसका मतलव यह नहीं है कि जो उसमें हैं वे सव झूठ वोलते हैं।

राजनीतिके वारेमें यह वात हो गई है कि राजनीतिका अर्थ
। कौटिल्यने जिस नीतिको स्वीकार किया उसे हम अच्छी
तो हमें पता चलेगा कि उसमें उसका स्वार्थ कुछ भी नहीं

था। सिर्फ समाजकी भलाईके लिए ही उसने उस नीतिको स्वीकार किया। खुद दुःख सहन करके भी समाजका भला करना इस नीतिको उसने स्वीकार किया। सबको समान मानकर वह चला। इसलिए इस नीतिकी दूसरी तरहकी नीतिसे तुलना नहीं की जा सकती।

समाजमें हम सत्य और अहिंसा लाना चाहें तो दूसरे हमारे साथ सत्य और अहिंसाका ही व्यवहार करें, लेकिन हम दूसरोंको धोखा दें यह नहीं हो सकता। इसीलिए बापूने कहा कि जीवनके अन्य क्षेत्रोंमें आप एक तरहसे बरतते हैं और राजनीतिमें दूसरी तरहसे यह कैसे हो सकता है? यदि मैं दो आदमियोंके साथ असत्य बोलू और दूसरे दोके साथ सत्य बोलू तो यह ठीक नहीं है। आदमी इस तरहसे विभाग करके जी नहीं सकता। आदमी साधु सन्यासियोंकी पूजा करते हैं, उनकी सब बातें सुनते हैं और उनकी कद्र भी करते हैं। लेकिन उनका अनुकरण नहीं करते। जिनके पास सत्ता है और जिनके पास धन है उनका ही लोग अनुकरण करते हैं। सन्यासीके पास वे इसलिए जाते हैं कि दूसरी जगह जो कुछ भी बुरा किया है उसे उनके पास छोड़ दिया और बस काम पूरा हुआ। तीर्थस्थान हो आये यानी दूसरा जीवन शुरु हुआ। दूसरी जगह किया हुआ पाप वहाँ धुल जाता है, आदमी यह मानते हैं; लेकिन उसका उत्तरार्ध 'तीर्थक्षेत्रे कृतम् पापम् वज्रलेपो भविष्यति' यह नहीं मानते। जीवनके टुकड़े करनेकी दृष्टिमेंसे इस प्रवृत्तिका जन्म हुआ है। जो वीतरागी है उसकी बात मैं नहीं करता। दुनियामें ऐसे आदमी बहुत कम हैं। कपड़ेलत्ते, खानेपीनेमें सुखी रहनेकी सामान्य आदमीकी नीति है। इसलिए वह अनुकरण करता है सत्तावालों और धनवानोंका। सच कहा जाय तो सत्य और अहिंसाका पालन जीवनके सब क्षेत्रोंमें करना चाहियें। बापूने विकालत की लेकिन वहाँ भी उन्होंने झूठ नहीं बोला। मुवक्कीलको वे कहते कि आप जो कुछ कह रहे हैं उसे मैं सच मानता हूँ लेकिन जिस समय मुझे पता चल जायगा कि आप झूठ कह रहे हैं तो मैं उसे प्रकट कर दूगा। फिर भी बापूकी विकालत अच्छी चलती थी। जैसा राजनीतिके बारेमें वैसा ही व्यापारके बारेमें

कहा जाता है। राजनीतिको तो सब बदनाम करते हैं लेकिन जीवनके सभी क्षेत्रोंमें इसी तरह चलता है। इसीलिए सत्यके अनुसार चलना यह व्यक्तिपर निर्भर रहता है। फ़र्क़ सिर्फ मात्राका होता है। लालसा कम है या अधिक इस परसे व्यक्तिकी जाँच होती है। राजनीतिमें भी हमेशा सत्यपथपर चलनेवालोंके उदाहरण मिलते हैं; मगर कम। किसी भी चीज़में अर्क तो कम ही रहता है जैसे शरीरमें प्राण। गुलाब बड़ा होता है लेकिन उसमें इतरकी एक बूंद ही होती है। अगर गुलाबमें उस जितना ही अर्क़ हो तो हम उसे नाकके पास ले ही न जा सकें। सत्य और अहिंसा सब क्षेत्रोंमें आ सकती है। जो लोग सत्य-अहिंसाको मानते हैं उन्हें अपने आपको साफ़ रखनेसे भागना नहीं चाहिये। बापू राजनीतिसे भागे नहीं। लेकिन धर्मके ख़ातिर ही वे राजनीतिमें गये थे। हमारे तत्वज्ञानमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ बताये गये हैं। उसमें भी धर्मको पहला स्थान दिया है। अर्थका उपार्जन भी धार्मिक रास्तेसे हो; काम भी धर्मप्रेरित हो तो ही इससे अंतमें मोक्ष स्वाभाविक होता है। इसके लिए किसी ख़ास प्रयत्नकी आवश्यकता नहीं रहती। बापूने पहले धर्मको अपनाया।

बापू पहलेसे ही सत्यमें मानते थे। बापू भी सामान्य आदमी थे। विद्यार्थीकी हैसियतसे उनका जीवन उन्नतिशील नहीं था। बुद्धि भी विशाल थी यह दावा उन्होंने नहीं किया। लेकिन बापूने जो शक्ति प्राप्त की वह किस तरह की? बचपनसे ही उन्होंने एक निश्चय किया था कि सत्य बोलना। उनको ये संस्कार घरसे ही मिले थे। हमारे संस्कारोंके लिए हमारे सिवा दूसरा कोई जिम्मेवार नहीं है। अच्छा हो तो बुद्धि मेरी और बुरा हो तो दोष दूसरेका। बापूने पहलेसे ही सत्यपर जोर दिया है। बुरी सोहबतमें पड़कर उन्होंने मांसाहार किया इससे पता चलता है कि सत्संगकी क्या जरूरत है। बुरी आदत पड़ते ` नहीं लगती। दूसरोंकी नक़ल करनी आसान है इसलिए संगत ...ी जिनका असर अच्छा ही हो। बापूने जिसके साथ संगत उन्हें मांसाहार करना पड़ा लेकिन इसके लिए झूठ ् उसे छोड़ दिया। तब हिंसाअहिंसाका सवाल

उनके सामने नहीं था। परदेश जाते समय माँने जो तीन व्रत उन्हे दिलवाये थे उनमें से ही सत्य और अहिंसा प्रगट हुई। इसीलिए बापूने व्रतोंपर बहुत जोर दिया है। अपनी कमजोरी दूर करनेके लिए व्रत लेने चाहिये। बापू दूसरोंको जीवनभर व्रत दिलवाते रहे। सत्यपर चलते चलते ही उन्होंने यह सब प्राप्त किया। जीवन व्रतपालनसे ही बनता है। चोरी भी उन्होंने की थी लेकिन सत्य बोलनेके आग्रहके कारण उन्होंने उसे क़बूल किया। हम भूल कबूल करनेके लिए तैयार नही रहते। चोरी कौन नही करता? चोरी तो सब करते हैं। आप यह स्वीकार न करे यह दूसरी बात है। मैं तो यह नहीं कह सकता। स्कूल जाते समय दूसरोंके आमोंके आम तोडकर खाता था तब यह नहीं मालूम था कि यह चोरी है। लेकिन उससे यह नहीं कहा जा सकता कि यह बुरा नही है। गाधीजीने जो गलती की वह अपने भाईके लिए की फिर भी उन्होंने अपनी भूल मान ली। हिम्मत हासिल करनेका यह तरीका है। निश्चय हो तो सब कुछ हो सकता है।

उनकी जो जीवनदृष्टि है वह इस तरहसे साफ दिखाई देती है। उसे हमें अपनाना है या हम जैसे हैं वैसे ही कोरे रहना है? उनकी दृष्टि कल्याणकारी, शक्तिदायिनी है। यह नहीं है कि मेहनत करनेपर वह प्राप्त न हो। लेकिन एक दिनमें आदमी यह सब प्राप्त नहीं कर सकता, फिर भी वह चाहे तो एक क्षणमें ईश्वरको प्राप्त कर सकता है। आदमी गिरता पडता रहे मगर वह सत्य मार्गपर चले तो उसकी उन्नति होती ही है। उसे ईश्वरके पाससे शक्तिकी याचना करनी चाहिये। ईश्वरकी शरणमें जाये तो उसे कुछ भी कठिनाई नहीं रहती। बापूने कहा है कि सत्य ही ईश्वर है फिर सत्यका सहारा लिये बगैर आदमीकी उन्नति कैसे हो? हर एक चीजकी कीमत तो चूकानी ही पडती है। सुख या दुख कोई भी चीज या कीर्ति — कुछ भी बगैर क़ीमत चुकाये नहीं मिलता। बापू अपने जीवनमें कीमत चुकानेकी बात पहले करते थे। इसके लिए जागृत रहते थे और उनकी सुधबुध कभी अशुद्ध नहीं हुई। (ता. १६–१०–'६४की शामकी प्रार्थनाका प्रवचन।)

२

वहनों और भाइयो,

गांधीजीकी जीवनदृष्टिके वारेमें कल हमने विचार किया था। तव प्रार्थनाके वारेमें कुछ विचार मैंने आपके सामने रखे थे। मैंने कहा था कि वापूकी जीवनदृष्टिको समझकर, हमें, उसे अपने जीवनमें अपनानी हो तो वापूके जीवनको ही हमें समझना चाहिये। उनकी जीवनदृष्टिको हम स्वीकार करना चाहते हैं या नहीं यह निर्णय भी हमें करना चाहिये।

वापूकी जीवनदृष्टि उनके जीवनमें ही है। उनका जीवन जिस तरहका रहा वह भी विकास होते होते ही वना। वचपनसे अंततकके उनके जीवनको हम देखें तो हमें यह समझमें आ जायगा। उन्होंने कहा ही है कि 'एक कदम भी काफ़ी है।' आदमी आदर्श रखे यह ठीक है, लेकिन वह उसे एक साथ नहीं पा सकता। इसलिए यह सव क्रमशः ही करना चाहिये। इसलिए आदमी एक ही कदम उठाये और वह ठीक ही उठाये तव ही दूसरा कदम ठीक उठेगा और फिर कदमें उठाना स्वाभाविक हो जायगा।

वे जव वॅरिस्टर होने गये तव उनका विचार सिर्फ़ वॅरिस्टर होना ही था। जो तीन व्रत माताने दिलवाये थे उनको पालन करनेका निश्चय भी था। इसलिए जव वे इंग्लैंडमें थे तव धीरे धीरे उनके ˜चार परिपक्व होते गये। जव वहाँ वे गये उससे पहले उनपर ˙.ारका असर था इसलिए वे सत्यसाधनाका निर्णय कर चूके ˜ उन्हें अपने व्रतपालनमें मदद मिली। इंग्लडमें वॅरिस्ट्रीका उन्होंने किया मगर इसके साथ साथ जीवनदृष्टिका भी काम उन्होंने किया। उनपर अनेक महापुरुषोंका

प्रभाव पड़ा है। वे महापुरुष, जिसस क्राईस्ट, टॉल्स्टॉय, कार्लाइल, रस्किन, थोरो वगैरह थे। यहां श्रीमद् राजचन्द्र थे। बाईबल, गिरि-प्रवचन वगैरहका उनपर प्रभाव है। गीताका प्रभाव उनपर बादमें पड़ा। उस प्रभावको उन्होंने विशेष प्रकारसे अपनाया। तबसे अपने जीवनको समृद्ध बनानेके लिए वे हमेशा गीतासे शक्ति पाते थे।

वहांसे भारत वापस आये तब तक उन्होने सामाजिक जीवनका विचार नही किया था। यहाँ अपने व्यवसायमें उन्हें निष्फलता मालूम हुई इसलिए वे अफ्रिका गये। वहाँ जाकर परिस्थिति ही ऐसी हो गई कि उनको सामाजिक जीवनमें दिलचस्पी हो गई। वैसे तो एक मुक-दमेकी पैरवीके लिए ही वे वहाँ गये थे। लेकिन वहाँ उन्होंने देखा कि हिंदीओंके प्रति अमानुषी वर्ताव और रंगभेदकी नीति वर्ती जा रही है, इसका सामना करना ही चाहिये।" उनको खुदको भी विषम परिस्थितिमें से गुजरना पडा। उनको लगा कि अन्यायका निवारण तो ढूंढ़ना ही चाहिये। वहांके हिंदीओंने कहा कि अगर वे वहाँ रहे तभी अन्यायका प्रतिकार हो सकता है। बापूने इस बातको स्वीकार किया और वे वहाँ रहे।

सत्याग्रहका शस्त्र पहले उन्होने वहाँ ढूंढा और उसका प्रयोग भी किया। वैसे तो उनको सत्याग्रह सिखानेवाली कस्तूरबा ही थीं। बचपनमें जब वे मैके जाती तब बापू उन्हें रोकते। बाने इसके विरुद्ध बलवा किया। बापू मना करते थे तो वे बार बार जाती थी क्योंकि बापूके इस प्रकार मना करनेसे उन्हें अपना स्वमानभंग लगता था। अन्तमें बापूने विरोध करना छोड़ दिया। अफ्रिकामें भी बाने ही बापूको सत्याग्रहका अनुभव कराया। बापू भी कहते हैं कि उन्हें बाने ही सत्याग्रह सिखाया। बापू यह कहते हैं, यही उनकी नम्रता है, और वही उनकी महत्ता है। मूल बात उनमें पड़ी न होती तो वे सीख नही सकते थे।

आदमी अपना कर्तव्य कर्म समझपूर्वक निष्ठासे करे, दूसरे उस तरहसे करते हैं या नही इसकी चिंता न करे, लेकिन खुद लगातार प्रयत्नशील रहे, जागृत रहे यह जरूरी है। अगर उसकी बात ठीक

होगी तो दूसरे उसमें साथ दिये वगैर नहीं रहते। आदमी दूसरोंके झगड़ेमें न पड़े तो उसे अपने काममें ज़रूर सफलता प्राप्त होगी।

दक्षिण अफ्रिक़ामें उनको जो सफलता मिली उसे पूर्ण सफलता नहीं कह सकते। उन्होंने वहाँ कुछ निश्चित सवालोंके लिए ही सत्याग्रह किया था और उनमें वे ज्यादातर सफल रहे यह सब मानते हैं।

गोखलेजीने वहाँसे उनको यहाँ बुलाया। आकर तुरन्त, हम जैसे सोचे वगैर काम करने लग जाते हैं वैसा उन्होंने नहीं किया। वे अपनी जीवनदृष्टि लेकर ही आये थे। स्वराजके वारेमें भी उन्होंने अच्छी तरह सोचा था। अपने देशकी सेवा करनेकी ही उनमें अभिलाषा थी। 'हिन्दस्वराज' उन्होंने इसी समय लिखा था। उनके विचारोंमें अंत तक, खास कुछ फेर नहीं हुआ। इससे पता चलता है कि उन्होंने कितनी मज़वूत और स्पष्ट तैयारी की थी। इसीलिए वापूने जो जीवनदृष्टि दी उसमें अपनी साधना, शुद्धि और तैयारीको ही ज्यादा महत्त्व दिया है। इस तरहसे ही काम हो सकता है इसकी स्पष्टता उनके जीवनसे होती है।

जव कुछ ग़लती हुई तव उन्होंने अपनी भूलको स्वीकार किया। असहकार और सविनयभंग उन्होंने जनताके सामने रखा। चौरीचोरामें हिंसा हुई उससे वे वहुत उलझनमें पड़े, दुःखी हुए, और तुरन्त ही उन्होंने पीछे हठ की। ऐसी पीछेहठ हो सकती है? उनके साथियोंने कहा कि इससे इज्जत जायगी। लेकिन वापूने कहा कि उन्होंने जल्दीमें कदम उठाया था यह अव उनकी समझमें आ गया है। लोगोंको वे समझा नहीं सके, यही इसका अर्थ होता है। वापूने कहा, 'मेरी तैयारी अधूरी, तपश्चर्या अधूरी'।

हमें जव सफलता मिलती है तव उसकी महत्ता हम ले लेते हैं, लेकिन निष्फलता मिलती है तो कहते हैं कि भूल खुदकी नहीं दूसरेकी है। वापूने ऐसा कभी नहीं किया। उन्होंने हमेशा अपना दोष देखा है, दूसरेका नहीं। वह मेरी दुर्वलता है, मेरी अहिंसा अधूरी है इसलिए ही हिमालय जैसी भूल मुझसे हो गई यह कहनेमें वे हिचकिचाये नहीं। दूसरे क्या कहेंगे इसकी पर्वा वे नहीं करते थे; लेकिन खुदको क्या

करना चाहिये इसकी वे चिंता करते थे। भूल कबूल करनेकी हिंमत उनमें थी। उनकी यह शक्ति उनके हरएक काममें दिखाई देती थी। इसलिए उनकी जीवनदृष्टि हमें अपनानी हो, अपना जीवन उसके अनुसार बनाना हो, देशको उस दिशामें ले जाना हो, अपना विकास करना हो, तो इस वस्तुको ध्यानमें रखना चाहिये।

इसके बाद उन्होंने देशमें घूमना शुरू किया, लोगोंको तैयार करना शुरू किया। इसकेलिए उन्होंने अनेक रास्ते अख्तियार किये। सुबह शाम वे जो प्रार्थना करते थे उसको उन्होंने समूहप्रार्थनाका स्वरूप दिया। यह प्रार्थना उन्होंने तैयार की। उसमें भी उनकी दृष्टि दिखाई देती है। सर्वधर्मसमभाव उन्होंने सिखाया है। Toleration परधर्मसहिष्णुता यह शब्द उनको पसंद नहीं आया, क्योंकि इसमें आदमी खुदको बड़ा समझता है। इसलिए परधर्मसहिष्णुता नहीं, लेकिन सर्वधर्मसमभाव यही योग्य शब्द है, यह उन्होंने कहा। सब धर्मोंके प्रति समभाव रखना यही धर्म है और इसीलिए उनकी प्रार्थनामें सब धर्मोंको स्थान मिला है। इस बारेमें संदिग्धतासे उन्होंने बात नहीं की। जो कहा वह स्पष्ट कहा है।

जो धर्म मुझे स्वाभाविक तौरसे प्राप्त हुआ, जिस धर्ममें मैं मानता हूँ वही धर्म मेरे लिए सबसे अच्छा है। लेकिन यह धर्म जितना मेरे लिए अच्छा है उतना ही दूसरोंका धर्म उनके लिए अच्छा है। यही सर्वधर्मसमभाव है। इसलिए उन्होंने किसीसे अपना धर्म छोडनेके लिए नहीं कहा। जिस धर्मका पालन वे करते हैं उसे अच्छी तरह पालन करना यही उनके लिए सच्चा रास्ता है। यह दृष्टि उन्हे गीतासे प्राप्त हुई है। गीतामें कहा है:

स्वधर्मे निधनं श्रेय. परधर्मो भयावह ।

जैसा भी हो वह धर्म मेरा है, उन्होंने यह जो कहा मैं समझता हूँ कि इसकी जड़ यहीं है। दूसरोंका धर्म ग्रहण करनेसे नाश होता है, यह बात खुदके लिए जितनी ठीक है उतनी ही दूसरोंके लिये भी ठीक है यह उन्होंने कहा है। उनपर गीताका इतना प्रभाव पडनेका कारण गीता है। गीता हिन्दूधर्मका निचोड़ है।

लिए मैं क्यों विचार करता हूँ? क्योंकि मुझे डर है कि दूसरा मुझे मारेगा। अपने जीवको बचानेकेलिए मुझे क्यों चिन्ता करनी चाहिये? यदि मुझे डर होगा तो ही चिन्ता करूंगा। असलमें तो अहिंसा ही ठीक है लेकिन वह कायरोंकी नहीं। कायरता अहिंसाकी ओट ले यह मुझे पुसाता नहीं। यह भी गीताजीका प्रभाव है।

दैवी संपत्तिकी बात करते हुए गीतामें बताया है —

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः
दानं दमश्च यज्ञश्च . .

उसमें पहले अभय है। अभयको महत्त्वका स्थान दिया है। अभयके बिना सत्य असंभव है। आदमी झूठ क्यों बोलता है? क्योंकि उसे डर है, भय है। इसलिए बापू हमेशा सबको निर्भय रखते थे। बापूकी साधना इतनी ज्वलन्त थी कि कदाचित किसीने उनको धोका दिया हो, उनके सामने झूठ बोलनेकी जरूरत नहीं रहती थी।

सत्य और अहिंसाकी साधना पूरी हो गई है यह दावा उन्होंने कभी नहीं किया।

अहिंसाकी साधना पूरी तरहसे हो जाती तो उसके सामने हिंसा टिक नहीं सकती। कुछ ऋषिमुनियोंके पास सिंह आदि पशु साथ साथ रहते थे। अहिंसाकी साधनाका ही यह परिणाम है। बापू वैसी अहिंसा चाहते थे, इसलिए उन्होंने अभयकी बात की है। आदमी दूसरेके प्रति तिरस्कार न रखें, द्वेष न रखें, लेकिन प्रेम रखें, समभाव रखें। प्रेमके लिए आदमीको सद्भाव अपनाना चाहिये, किसीके प्रति असद्भाव नहीं। मैं कुछ बुरा नहीं करूंगा इतना तय किया जाय तो भी आदमीके लिए अच्छा कहा जायगा। इस तरहकी नकारात्मक बात पहले की जाय। इसपरसे आदमी हकारात्मक बातपर आ सकता है। मैं बुरा नहीं करूंगा यह तय हो तो मैं ठीक करूंगा" इस रास्तेपर आया जायगा।" 'डरूंगा नहीं' यह नकारात्मक बात स्वीकारेंगे तभी अहिंसापर आ सकेंगे। आदमी निर्भय हो गया ऐसा तभी कहा जाय जब कोई भी उससे नहीं डरे। [illegible] है तब तक वह झूठ

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनंदनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥

मुझे लगता है यह अक्षरशः ठीक है। गीता ऐसा ग्रंथ है जिसमें किसी धर्मके बारेमें विरोध कुछ नहीं है, नाम नहीं है इसमें सब धर्म-वाले उसे पढ़ सकते हैं। गीताका अध्ययन संशोधन सिर्फ हिंदमें ही नहीं, सब देशोंमें होता रहता है यह उसका प्रमाण है।

गीतामेंसे एक और सत्य उपस्थित होता है वह यह है—"
"आत्मवत् सर्वभूतेषु' Do unto others as you want to be done unto yourself यह बाइबलमें कहा है। इसमें सिर्फ आदमियोंके साथका व्यवहार ही सूचित किया है, लेकिन 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' में प्राणिमात्रकेप्रति समभाव बताया गया है। इसलिये यह वचन दूसरे वचनसे ज्यादा अच्छा है। इसमेंसे ही अहिंसा जन्मी। नहीं तो अहिंसाको कहां स्थान था? बापूने यह कहा कि गीता भी अहिंसा सिखाती है। मुझे लगता है कि बापूने उसमेंसे थोड़ा अधिक अर्थ निकाला है, वैसे यह अशक्य नहीं है। बापू यह बताना चाहते थे कि अहिंसा ही आदमीके लिये साधनाका मार्ग है। सत्य की साधना करना इसपर सब सहमत हैं तो फिर उस साधनाके लिए साधन अहिंसाके सिवा और कुछ नहीं हो सकता यह समझ लेना चाहिये।

किसीने बापूसे पूछा, 'सत्य और अहिंसा इन दोनोंमेंसे एकको पसंद करना हो तो आप किसको पसंद करेंगे? 'सत्य' उन्होंने तुरन्त जवाब दिया। और फिर कहा कि सत्य अहिंसाके विना हो नहीं सकता। मुख्य वस्तु सत्य है यह हमें भूलना नहीं चाहिये। हिंसाका मार्ग अपनानेसे आदमीमें विकार उत्पन्न होते हैं क्योंकि वह मार्ग क्रोधसे पैदा होता है। क्रोधके विना आदमी हिंसा कर ही नहीं सकता। हिंसामें क्रोधके अलावा तिरस्कार, झूठ, वग़ैरह भी रहते हैं और आदमी उनमें फँस जाता है। इसलिए उसके द्वारा सत्यकी साधना हो नहीं सकती। अहिंसामें किसीकी भी भावनाको ठेस नहीं पहुँचती। सच्ची निर्भयताके विना अहिंसा हो नहीं सकती। आदमी हिंसा करता है लेकिन वह भयसे करता है। डरसे हिंसा पैदा होती है। दूसरेको मारनेके

लिए मैं क्यों विचार करता हूं? क्योंकि मुझे डर है कि दूसरा मुझे मारेगा। अपने जीवको बचानेकेलिए मुझे क्यों चिंता करनी चाहिये? यदि मुझे डर होगा तो ही चिंता करूंगा। असलमें तो अहिंसा ही ठीक है लेकिन वह कायरोंकी नहीं। कायरता अहिंसाकी ओट ले यह मुझे पुसाता नहीं। यह भी गीताजीका प्रभाव है।

दैवी संपत्तिकी बात करते हुए गीतामें बताया है :—

> अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः
> दानं दमश्च यज्ञश्च . . . .

उसमें पहले अभय है। अभयको महत्त्वका स्थान दिया है। अभयके बिना सत्य अशक्य है। आदमी झूठ क्यों बोलता है? क्योंकि उसे डर है, भय है। इसलिए बापू हमेशा सबको निर्भय रखते थे। बापूकी साधना इतनी ज्वलंत थी कि कदाचित् किसीने उनको धोखा दिया हो, उनके सामने झूठ बोलनेकी जरूरत नहीं रहती थी।

सत्य और अहिंसाकी साधना पूरी हो गई है यह दावा उन्होंने कभी नहीं किया।

अहिंसाकी साधना पूरी तरहसे हो जाती तो उसके सामने हिंसा टिक नहीं सकती। कुछ ऋषिमुनियोंके पास सिंह आदि पशु साथ साथ रहते थे। अहिंसाकी साधनाका ही यह परिणाम है। बापू वैसी अहिंसा चाहते थे, इसलिए उन्होंने अभयकी बात की है। आदमी दूसरेके प्रति तिरस्कार न रखे, द्वेष न रखे, लेकिन प्रेम रखे, समभाव रखे। प्रेमके लिए आदमीको सद्भाव अपनाना चाहिये, किसीके प्रति असद्भाव नहीं। मैं कुछ बुरा नहीं करूंगा इतना तय किया जाय तो भी आदमीके लिए अच्छा कहा जायगा। इस तरहकी नकारात्मक बात पहले की जाय। इसपरसे आदमी हकारात्मक बातपर आ सकता है। मैं बुरा नहीं करूंगा यह तय हो तो मैं ठीक करूंगा" इस रास्तेपर जाया जायगा।" 'डरूंगा नहीं' यह नकारात्मक बात स्वीकारेंगे तभी अहिंसापर जा सकेंगे। आदमी निर्भय हो गया ऐसा तभी कहा जाय जब कोई भी उससे नहीं डरे। मुझसे कोई डरता है तब तक वह मूठ

बोलेगा। मुझसे दूसरे डरते हैं तब मैं भी दूसरोंसे डरूंगा। सेरके लिए सवासेर इस कहावतको इस संदर्भमें जाँचने जैसा है।

जो किसीसे नहीं डरता उससे कोई नहीं डरता यह बात व्यक्तिके लिए ठीक है, राज्यके लिए नहीं। जिस राज्यका डर नहीं वह राज्य चल नहीं सकता। व्यक्ति और राज्यमें अंतर है। व्यक्ति चाहे जितना बलिदान दे सकता है लेकिन सब व्यक्तियोंसे वैसा बलिदान कराया नहीं जा सकता, क्योंकि व्यक्तिकी जिम्मेवारी अपने तक ही है। समाजमें सब सत्य और अहिंसाको स्वीकार नहीं करते। बापूके पास आकर बहुतसोंने व्रत लिये लेकिन उनका पूर्ण पालन सब कर सके यह नहीं था। आदमीमें प्रामाणिकता कितनी भी हो लेकिन अपनी मर्यादाको न समझनेसे उसके पाँव दुर्बल हो जायेंगे। बापूने अपनी शक्तिसे ज्यादा कुछ भी करनेके लिए नहीं कहा। दोष तो व्रत लेनेवालोंके अति उत्साहका है। बापू और दूसरे साधकोंमें फ़र्क़ है। हर एक साधकको अपने रास्ते पर चलना चाहिये। बुद्ध भगवानकी तरह बापूने भी कहा है कि मैं कहता हूँ इसलिए मेरी बात मानो यह नहीं है, लेकिन आपको उसमें विश्वास हो तो मानें। क्योंकि यदि आपको विश्वास है तो वह आपकी बात हो जाती है।

अपने साथियोंसे वे हमेशा वफ़ादार रहे हैं। साथियोंकी भूलके लिए वे ख़ुद प्रायश्चित्त करते, क्योंकि वे मानते थे कि उनकी वजहसे ही वे साथी उनके साथ हैं। बापूकी इस वृत्तिमें रही भावनाको समझना चाहिये। जीवनके हर एक अंगके बारेमें उन्होंने सोचा है। खाना, पीना, पहनना, ओढ़ना, नौकरी करना, व्यापार करना, राजनीति वग़ैरह सबके बारेमें बापूने सलाह दी है। जो मांगता था उसे ही बापू सलाह देते थे। जिन्होंने उनको बापू नहीं कहा उन्होंने उनकी मृत्युके बाद उन्हें राष्ट्रपिताके तौर पर स्वीकार किया। बापूके मनमें अपने परायेका भाव नहीं था। सब उनके ही थे। समन्वय से ही सत्यकी राहपर जा सकते हैं। ईश्वरके सामने सब समान हैं। जो भेदभाव रखते हैं वे कैसे कह सकते हैं कि 'हम ईश्वरकी सृष्टिके हैं ?

बापूने जो कार्यक्रम स्वराज प्राप्तिके लिए दिये थे उन्हें अब भी क्या हमें पूरे करने चाहिये' यह सवाल पूछा जाता है। बापू स्थितिचुस्त नहीं थे। उनके दिये हुए कार्यक्रमोंको देशकालके मुताबिक करते ही रहना चाहिये। बापू तो ज्यादा ज्यादा विशाल होते गये हैं।' सठिया गये यह कहना उनके लिए ठीक नहीं, शायद हम सबके लिए हो' स्यानपन यह अनुभवका परिणाम है, बुद्धिका नहीं। उम्र बढती जाती है, वैसे स्यानपन भी बढ़ता जाता है — भले शरीर क्षीण होता जाय। बापूका शरीर क्षीण होता गया लेकिन उनकी बुद्धि, वृत्ति, अंतरकी आवाज, ज्यादा ज्यादा स्पष्ट होती गई। वे शरीरसे दुर्बल हुए तो भी देशको उनकी बहुत जरूरत थी और इसलिए हिंदू मुसलमानोंका झगडा पराकाष्ठाको पहुँचा तब वे दुर्बल शरीरसे, जोखमकी पर्वा किये बगैर अकेले नोआखली गये; कठिन रास्तेपर चले। जैसे जैसे वे आगे बढते गये वैसे वैसे वे ज्यादा ज्यादा परिपक्व होते गये, उनकी दृष्टि साफ होती चली। सत्यके साधकके लिए यह परीक्षा है। उनको महात्मा शब्द भाता नहीं था, उससे वे अकुलाते थे। मुझे मेरा भाई मार डाले, उसके प्रति मैं सद्भाव रख सकूं, और 'हे राम' कहके मैं मृत्युकी शरण लूं तभी मैं सच्चा महात्मा हूँ यह वे कहा करते थे। ईश्वरने उनको वैसी ही मृत्यु दी, और उसीके मुताबिक वे बर्ते।

उनकी इस तरहकी जीवनदृष्टि अपनानेमें जो क़ीमत चुकानी है उसके लिए हमारी तैयारी नहीं है। हम उससे भागते हैं। ज्ञान पानेकी वृत्तिके बिना ज्ञान प्राप्त नहीं होता। ज्ञान प्राप्तकर लें तो उसका फल कर्ममें आये बिना नहीं रहता। जानकारी यह ज्ञान नहीं है। ज्ञान प्राप्त करनेसे हम भागते हैं। बापू इस तरहसे भागते नहीं थे, और इससे उनका कर्म उनके ज्ञानका फल है यह प्रतीत होता था।

(ता० १७-१०-६४ की शामकी प्रार्थनाके बादका प्रवचन)

२

बहनो और भाइयो,

बापूकी जीवनदृष्टिके बारेमें हम दो दिनसे विचार कर रहे हैं। कुछ बातें मैंने आपके सामने रखी हैं। यह जीवनदृष्टि इतनी व्यापक है कि जीवनके हर अंगको स्पर्श करती है। उसके हर अंगका विचार करें तो समय बहुत चाहिये।

यह चर्चाका विषय है इसकी निस्बत अधिक तो खुदको अच्छी-तरहसे समझनेका विषय है। उनकी जीवनदृष्टिको समझनेके साथ साथ हमें अपने आपको जांचनेका अवसर मिलता है। बापूने जीवनके अलग अलग क्षेत्रोंके बारेमें अपने विचार बताये हैं; सामाजिक क्षेत्रमें, राजकीय क्षेत्रमें, धार्मिक क्षेत्रमें, हरएकमें उन्होंने मौलिक विचारसरणी हमारे सामने रखी है। व्यक्ति और समाजका क्या धर्म है यह उन्होंने स्पष्टतासे बताया है; इतना ही नहीं, उन्होंने उस धर्मका आचरण भी किया है। समाजकी रचना किस प्रकारकी होनी चाहिये यह उन्होंने बार बार कहा है। धर्मके बारेमें तो उन्होंने हमेशा कहा ही है। को भी चीज़ धर्मके सिवा नहीं होनी चाहिये यह उनके कहनेका भाव है, और वह भी संदिग्ध भाषामें नहीं, स्पष्ट भाषामें। जीवनकी छ छोटी बातोंके बारेमें अनेक लोग उनसे पूछने जाते थे और पूछनेवाल वे स्पष्ट सलाह भी देते थे। व्यक्तिगत जीवनके ऐसे छोटे सवालोंके बारेमें उन्होंने बहुत कहा है। ईश्वरसे लेकर आदमीको खानी चाहिये या नहीं और राजकाजके कामोंसे लेकर घरके काम चलाये जाँय इसके बारेमें भी उन्होंने मार्गदर्शन कराया है।

ये सब करते करते उन्होंने कहा है कि गीता ही मेरा है। कुछ भी उलझन हो, वे गीतामेंसे उसका हल ढूंढते औ

मिल भी जाता। मै मानता हूँ कि गीता एक ऐसा धर्मग्रंथ है जिसमेंसे आदमीको हल मिले बगैर रहता नहीं। गीताका उपदेश स्वीकार कर हम चलें तो हमें लाभ होगा।

गीताको पढ़नेसे पहली बात यह दिखाई देती है कि ईश्वर है या नहीं इसके बारेमें हमें सोचना नहीं है। ईश्वर है वही सब कुछ करता है और उससे ही सबकुछ आता है यह मानकर हमें चलना है।

इद ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्य न च मा योऽभ्यसूयति।।

तुम्हें बताया गया यह परम रहस्य तुम कभी भी अतपस्वीको अभक्तको, या सेवारहितको और मेरा द्वेष करनेवालेको कहने योग्य नहीं समझना। मुझमें श्रद्धा रखकर जो चलता है उसका ही सब संकोच दूर होता है। गीतामें शुरूसे अन्ततक त्यागपर यह बात बताई है। गीतापर अनेक ग्रंथ लिखे गये हैं भाष्य लिखे गये हैं। लेकिन बापूने जीवनमें उसका उपयोग करके 'अनासक्तियोग' लिखा वह अद्भुत है। इसलिए सामान्य आदमी भी गीता सरलतासे समझ सकते हैं। उनका गीताका अभ्यास हमेशा सजीव रहा है। इसलिए उन्होंने अधिकसे अधिक कल्याणकारी वस्तु दी है। इतनी सरलतासे किसीने गीताको समझाया हो यह मैंने देखा नहीं है। इसीलिए गीताको समझनेके लिए और बापूके कामोंको समझनेके लिए 'अनासक्तियोग' उपयोगी है।

गीता लिखी गई या कही गई या लड़ाईके समय लड़नेके लिये समझानेकेलिए लिखी गई या बिलकुल लिखी ही नहीं गई इसके बारेमें चर्चा होता है। गीतामें जो कुछ कहा है उस चर्चाका उनके साथ कुछ संबंध नहीं है। गीता मानवधर्मका उपदेश देती है। पांडव-कौरवोंकी लड़ाई हुई हो या न हुई हो लेकिन गीतामें जो कुछ कहा है वह आज भी उतना ही सत्य है, क्योंकि पांडवकौरवोंकी लड़ाई यानी अच्छी और बुरी वृत्तियोंमें लड़ाई, सत्याग्रह और दुराग्रहके बीच लड़ाई। यह जो लड़ाई चलती है इसमें आदमी उलझनमें फँस जाता है तब उसमेंसे कैसे निकलना यह गीता बताती है। इसीलिए

शुरूमें जो वातें अर्जुनसे कहीं हैं उन्हें स्थिर चित्तसे सुननेके लिए कहा है।

दूसरी वात यह है, ईश्वर पर भरोसा रखकर हमें चलना चाहिये; क्योंकि मूलमें ही यह वात न होगी तो चर्चा करनेका कुछ अर्थ नहीं है। अलवत्ता सव आदमियोंको इन वातोंमें रस नहीं होगा यह मानकर ही गीताकार चले हैं। उन्होंने कहा है:

मनुष्याणाम् सहस्रेपु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥

वहुत कम आदमी सत्य क्या है इसे जाननेकी कोशिश करते हैं और जो वहुत मेहनत करते हैं उनमेंसे किसीको ही सफलता मिलती है। यह जव कहा तव अर्जुनने सवाल पूछा कि आदमीको शंका हो तव क्या हो? आदमी वहुत दूरका विचार करे वग़ैर अच्छा कार्य करता रहे तो वह कार्य वेकार नहीं जाता यह मनुष्यको अभयदान दिया गया है।

न हि कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गति तात गच्छति।

जो ईश्वरकी खोज करता ही रहता है उसकी वात ही अलग है। उसे पाये वग़ैर उसे चैन नहीं पड़ता। आदमी हमेशा कल्याणकारी कामोंमें लगा रहे तो ही थोड़ा वहुत कार्य शाश्वत रहता है। इस-लिए कल मैंने कहा था 'एक कदम काफ़ी है' यह वात ठीक है। सामान्य आदमी वहुत दूरकी सोचता है तो वह उलझ जाता है। उसके मनमें वुद्धिभ्रम पैदा होता जाता है।

न वुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम्।
जोपयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन्।

ज्ञानियोंको सामान्य लोगोंमें वुद्धिभेद पैदा नहीं करना चाहिये; मगर हमेशा अच्छे काम वे करें इसके लिए उनको उत्साहित करना चाहिये। जो ज्ञानी होनेके लिए कोशिश कर रहा है और ज्ञान पानेके लिए सही रास्तेपर जा रहा है वह विद्वान है। जो यह वात समझता नहीं वही वुद्धिभेद पैदा करता है।

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥

संशय पैदा करना यह बात ठीक नहीं है। संशयात्माका तो नाश ही होता है। नाश होता है इसका क्या मतलब? जो संशयात्मा है वह निर्णय नहीं कर सकता, जो निर्णय नहीं कर सकता वह काम नहीं कर सकता, और जो काम नहीं कर सकता उसका नाश ही होता है। अभ्यास करनेमें भी यह किताब अच्छी या वह अच्छी यह करेंगे इससे दोनोंमेंसे एक भी किताब पढ़ी नहीं जायेगी। इसके परिणाम-स्वरूप फ़ेल होना पड़े तो यह विनाश ही है। संशय पैदा न हो यह विद्वानोंको देखना चाहिये। इसलिए विद्वानको अपना वर्ताव भी वैसा ही रखना चाहिये। अज्ञानसे, अश्रद्धासे संशय पैदा होता है, वैसे ही संशयसे अज्ञान और अश्रद्धा पैदा होती है।

बापूने जो कुछ लिखा है वह नवजीवन प्रकाशन मंदिरसे प्रसिद्ध हुआ है और होता रहेगा। वह सब पढ़ते हैं तो ऐसा लगता है कि बापूने एक ही बात बार बार कही है। यह शिक्षककी रीत है। शिक्षक बारबार वही बात करता है, क्योंकि इससे ही विद्यार्थीको समझनेमें आसानी रहती है। गीतामें भी बहुतसी बातें बार बार कही गई हैं। लेकिन वे इसतरह कही गई हैं कि आदमीकी दिलचस्पी उनमें बनी रहे। वैसे तो थोड़ेमें ही सब बातें बताई गई हैं। आदमीका नाश किसतरह होता है, वह कैसे गिरता है वगैरह गीतामें शुरूमें ही बताया है। और फिरसे तीसरे अध्यायमें :

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥

अर्जुनको सवाल उठता है। इच्छा न होने पर भी आदमी किससे प्रेरित होकर पाप करता है? हम सबकी यह स्थिति है। पाप करनेकी वृत्ति शायद ही किसीकी होती है। अनिच्छासे भी जो पाप होता है तो वह क्यों होता है? अर्जुन जैसेको भी संशय होता है तो हम सबको संशय हो यह स्वाभाविक है। तब अंतमें 'यथेच्छसि तथा कुरु' यह भगवानने कहा है। उन्होंने कहा, सब बातें मैंने तुम्हें अच्छी

[illegible] थी। [illegible] तो हमारी [illegible] ? इसलिए [illegible] चाहिये। गीतामें कहा है:

न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते।

यानी ईश्वर कर्मके संयोगोंको पैदा ही नहीं करता; वह तो स्वभावके अनुसार होता रहता है। आदमीका कर्म उसका स्वभाव निश्चित करता है। इसीलिये बादमें गीतामें अनासक्तियोग बताया है। इसके सिवा दूसरा रास्ता [illegible] सूझता। कर्मफलका त्याग करनेके लिए गीतामें कहा है, और कर्म किये बगैर तो जिया नहीं जाता। तब आदमीको क्या करना चाहिये? गीताकारने मार्गदर्शन किया है:—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

इसके बाद गीतामें समत्व पर जोर दिया है। यह समत्व किस तरह आ जाय? चांडाल, कुत्ता, ब्राह्मण इन सबको एक कैसे माना जाय? यह तो बुनियादी [illegible] ही कहा जाय। तब समत्वका अर्थ यह हुआ कि किसीके प्रति भी हमें तिरस्कार या द्वेष नहीं रखना चाहिये। कर्मको यज्ञ कहा है। आदमीके अस्तित्वके लिए कर्म अनिवार्य है लेकिन वह कर्म ईश्वरको अर्पण करके करना चाहिये। सेवाका भी यही अर्थ है। आदमी कर्मफलका त्याग करे यानी अनासक्ति अपनाये तब उसे निरिच्छ होना होता है। अपने लिए नहीं, लेकिन दूसरेके लिए मैं कुछ करता हूँ यह कहूँ ऐसी वृत्ति रखते रखते आदमी ईश्वरमय हो सकता है।

कोई यह कहे कि गीतामें ज्ञान ही है तो हम उससे झगड़ा नहीं करेंगे। लेकिन गीताकारने सामान्य आदमियोंसे कहा है कि आप समत्वसे काम करते रहेंगे तो ईश्वरके नज़दीक जा सकेंगे। ज्ञानसे ध्यानयोग प्राप्त होता है, और ध्यानयोगसे कर्मयोग प्राप्त होता है। इसलिए गीतामें ज्ञान है यह जो मानते हैं उनके साथ झगड़नेकी ज़रूरत नहीं। यदि जीवन समत्वसे जीया जाय तो सब कुछ आ जायगा। लेकिन यह समझना कठिन है। मुझे कोई सुख देता है तो मुझे अच्छा लगता है इसलिए मैं दूसरेको सुख दूँ यह मुझे अच्छा लगना चाहिये। अनेक

८

बहनो और भाइयो,

पिछले प्रवचनोंमें मैंने सत्य-असत्यका भेद बताया था। और कहा था कि सत्यकी तरह असत्यकी भी साधना करनेसे ईश्वर दर्शन हो सकता है। सब कुछ ईश्वरका ही है। इसलिए सबके प्रति समदृष्टि रखनी चाहिये। इसलिए हमें किसीका तिरस्कार नहीं करना चाहिये यह मैं समझता हूं।

आदमी हमेशा प्रगति करता रहे यह उसकेलिए जरूरी है। वह स्वधर्ममें लगा रहे यह भी इतना ही जरूरी है। लेकिन उसने एकबार जो मार्ग पसन्द किया है उसे बारबार बदला करे तो जिस मंजिलकी ओर उसे जाना है वहां तक पहुँचनेमें उसे मुश्किलें आयेंगी। इसलिए गीताकारने कहा है:—

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।

लेकिन मेरा ही रास्ता ठीक है, दूसरेका नहीं; इस तरह रास्तेके लिए झगड़ना नहीं चाहिये। आदमी एक ही मंजिलके लिए अलग अलग रास्ते ले तो अंतमें वह भटक जायेगा, और मंजिलतक पहुँच नहीं सकेगा। इसलिए आदमीको निश्चित मनसे अपने सब काम करने चाहिये। आदमीने जिन साधनोंको शुरूसे ही स्वीकार किया है, उनका आखिरतक प्रामाणिकतासे उपयोग करना चाहिये और दूसरोंके साधनोंका तिरस्कार भी नहीं करना चाहिये! गीताकारने कहा है:

शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः।

आदमीको हमेशा समदृष्टि रखनी चाहिये। बापूने कभी भी किसीके लिए उपेक्षावृत्ति नहीं रखी। सबके प्रति सेवावृत्ति रखकर आदमीको

सबके भलेकी इच्छा करनी चाहिये : सर्वेऽत्र सुखिन सन्तु सर्वे सन्तु निरामयः इसमें 'सर्वे' कहा गया है। इसलिये कम-ज्यादा करनेका सवाल रहता ही नहीं। जो मैं ठीक समझता हूँ वही सही है यह प्रामाणिकतासे कहता रहूँ तो फिर जिसने हमारा नुकसान किया है उसका भी भला हो यह इच्छा करना इससे सभ्रम होना सभव है। चोरका भी भला हो यह इच्छा यदि करें, इसका क्या अर्थ है? क्या चोरी बढने दे? नहीं, लेकिन उसे सद्‌बुद्धि मिले और वह सुखी रहे, इसका यह अर्थ है। यानी उसके चोरीके काममें मदद नही करनी, यदि वह बीमार हो जाय तो उसकी सेवा करनी चाहिये। सर्वेऽत्र सुखिन सन्तु इसका तभी यथार्थ अर्थ समझमें आयेगा। सब भला देखें, अच्छा देखें, तो किसीके लिए भी दुःख नही रहेगा। इस तरह सब सुखी हो जायें। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु यह जो कहा है वह इसीलिए। इस तरह करे तभी प्रार्थना सफल होगी। गीतामें जो कहा है वह यह है कि जो कुछ करें वह प्रामाणिकतासे करें, ईश्वरमें श्रद्धा रखकर करे। इससे अर्जुनको सशय हुआ। इसलिए वह अच्छे मनपसद भोगोसे वचित रहा। और ईश्वर दर्शनमें भी तब उसने प्रश्न किया, हे भगवान, मेरा यह सशय मिटाइये। तब गीताकारने कहा —

न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति।

इससे किसीका नाश नही होता, यह अभयवचन दिया। इसके साथ साथ हम 'कल्याणकृत' ही रहे हैं या नहीं इसका भी खयाल रखना चाहिये। इसके लिए आदमीको क्या करना चाहिये? सबके प्रति समभाव रखना चाहिये। गीतामें बारबार कहा है कि कौन सर्वश्रेष्ठ है?

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ।।

जो अभ्यास न कर सके, मुझमें एकाग्र चित्त नही हो सके तो उसे कर्मफलका त्याग करना चाहिये। लेकिन कर्म करनेसे फल तो मिलेगा ही। फिर फलके प्रति सकामवृत्ति नहीं रखनी चाहिये। कर्तव्यबुद्धिसे

कर्म करें यज्ञके तौरपर कर्म करें तो फिर सोचना रहता ही नहीं। सुखकी व्याख्या भी इसीतरह की गई है। यदि इसकी व्याख्या गलत हो तो दुःख ही मिलता है और एक दुःखके साथ अनेक दुःख खिंच आते हैं। इससे गीताकारने कहा है:

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्॥

और अंतमें इससे समाधान और शांति प्राप्त होती है। अंतमें सुख प्रसन्न चित्तमें ही है। देखिये --

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥

हमेशा प्रसन्नता रहे तोही सुख सच्चा है, सात्त्विक है। यह है वह नहीं है यह राजसी वृत्ति है।

मैंने पहले बताया है कि बहुत कम आदमी ईश्वरदर्शनके लिए तरसते हैं। सात्त्विक आदमी सुखकी इच्छा करता है। यदि सुखकेलिए मेहनत की जाय तो किस तरह? किसीके बुरेकी इच्छा न करें, किसीका बिगाड़ न करें और सबकी सेवा करें तो, उसमेंसे जो सुख मिलता है उसे कोई नहीं ले सकता।

इस तरह अलग अलग ढंगसे क्या प्राप्त करें, किस तरहसे प्राप्त करें यह गीतामें बताया है। यह सब सुनकर जो ठीक लगे वह करें, लेकिन यदि निश्चय नहीं कर सकते हैं तो --

मन्मनाभव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥

बापूने इस रास्तेपर जानेके लिए बहुत कोशिश की और बहुत सफलता भी पायी। उन्होंने कभी भी अत्यंत विषम परिस्थितिमें भी मनका समाधान नहीं गँवाया, क्योंकि वे जो कुछ करते थे वह ईश्वर-समर्पण करके ही करते थे। रामनाम ही अटल उपाय है, इसका अर्थ ठीक तरहसे समझना चाहिये। रामनाम लेना यानी श्री रामकी शरण जाना। इसलिए चिंताका कोई कारण रहता ही नहीं; जो कुछ है

वह उसीका ही है, जो कुछ है वह उसे ही समर्पण करना है। सुखदुःख एकसा समझना इसका क्या अर्थ? आदमीको जो चोट लगती है वह लगेगी ही, खून निकलेगा ही, वैसे ही ठंडा, ठंडा ही लगेगा, गरम गरम ही लगेगा। एकसा समझना इसका क्या मतलब? गीताकारने कहा है:—

> मात्रास्पर्शास्तु कौंतेय शीतोष्णसुखदु:खदा ।
> आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ।।

हम घरमें हीटर लायें या एअर कन्डीशनर लायें, लेकिन बाहर जायेंगे तब क्या होगा? कोई कहे कि मैं अकेला सुख पाऊँ यह कैसे होगा? सुखदुःख लगभग एकसी मात्रामें आते हैं। सिर्फ सुख या सिर्फ दुःख कभी नहीं आता। इसलिये सुख और दुःखको इस तरहसे शांत चित्त भोग ले तो प्रसन्नता रहेगी और तभी समता आ सकती है। महात्मा गांधी इसतरह बरतते थे। इस तरह रहकर उन्होंने अनेक चीजें बताईं। इन चीजोंको अनासक्तियोगसे जितना समझ सकते हैं उतना दूसरी आलोचनाओंसे समझा नहीं जाता।

सामान्य आदमी जो ग्रहण कर सकता है वही कल्याणका रास्ता है। जिसके पास सब कुछ है उसकी क्या सेवा करनी? तदुरुस्तकी क्या सेवा? लेकिन जिसके पास नहीं है उसकी सेवा करनी चाहिये। सबकी तरफ समान वृत्ति रखें और सेवा करें तभी हम दूसरोंको उपयोगी साबित हो सकेंगे।

गांधीजी आये। उन्होंने योजनाएँ रखीं, अपनी राय बताई, और चर्चे किये। उनकी योजनाओं और मतको न स्वीकारनेवालोंको भी उन्होंने अवकारा, इससे अंतमें उनकी बातोंको बहुतसे स्वीकार किये बिना रह नहीं सके। वे सबकी तरफ समभावसे, मित्रभावसे देखते थे। बापूकी जीवनदृष्टि हम जो अलग अलग क्षेत्रमें देखते हैं उसे समझकर और स्वीकारकर हमें उसपर अमल करना चाहिये। बापूने राजकीय क्षेत्रमें काम किया लेकिन उन्होंने काम करनेके लिए राजनीति पसंद नहीं की थी; धर्मसे प्रेरित होकर उस क्षेत्रको उन्होंने स्वीकार किया था।

राजनीतिमें भी उनका मानस धार्मिक था। इतना ही नहीं, उनकी दृष्टिसे जीवनके हरएक क्षेत्रमें धर्म मुख्य साधन रहा है। जिस समय वे हिन्दुस्तानमें आये उस समय राजकीय जीवन उन्होंने सामान्य आदमीकी सेवाके तौर पर अपनाया। धर्मको ध्यानमें रखकर राजनीतिमें काम करनेकी वृत्ति रखना इसके लिए गीतामें कुछ रुकावट नहीं है। देखिय :—

> बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्।
> धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।।

जो बलवान है उसकी जो शक्ति है वह मैं हूँ—ईश्वर हूँ। वासनाएँ या कामराग पूरा करनेके लिये नहीं, बल्कि उन्हें छोड़कर जो शक्ति है वह मैं हूँ; जो धर्मसे विरुद्ध नहीं है। ऐसी प्रबल इच्छा करनेमें हर्ज नहीं है। और इस तरह गांधीजी अपने मनसे रागद्वेष निकालकर राजनीतिमें भी काम करते थे। उनका यह मार्ग सिर्फ़ स्वतंत्रताके लिए ही नहीं था, सत्याग्रहके लिए था। सत्याग्रहका यह रास्ता, हरएकके लिए हमेशा अपनी मुश्किलोंसे बाहर निकलनेका साधन था, जो उन्होंने दिया। उन्होंने जो कहा है उससे उलटा जब उस हथियारका उपयोग किया जाय तो दोष हथियारका नहीं इस्तेमाल करनेवालेका है, यह समझा जाय। हथियारका जिस तरहसे उपयोग करना चाहिये उसी तरह होना चाहिये। सत्याग्रहका हथियार सिर्फ़ अंग्रेजोंका सामना करनेके लिए नहीं, लेकिन जहाँ जहाँ अन्याय दिखाई दे वहाँ प्रतिकार करनेका एक साधन था।

हमारा राज्य लोकतंत्र राज्य है। इसमें भी सत्याग्रहके लिए स्थान है ही। क्योंकि लोकतंत्रमें लोगोंके प्रतिनिधियोंके राज्य करते रहने पर भी उनसे भूल होनेकी संभावना है। उस भूलको सुधारनेके लिए उन्हें समझाया जाता है। फिर भी कुछ न हो तो अलग बात है; और हो तो अच्छा ही है। फिर भी कुछ न हो तो कुछ भी करना नहीं चाहिये यह ठीक नहीं है। जो सारी दुनियाका न्याय करने जाता है वह किसीका भी नहीं रहता, यह स्थिति भी अच्छी नहीं। वह तो डॉन क्वीक्झोट जैसा हो जाता है। हरएकको अपनी मर्यादामें रहकर काम करना चाहिये। अन्याय दिखाई दे, उसमें फेर नहीं होगा यह

विरवास हो जाय तो सत्याग्रह करनेका सबको अधिकार है। संविधान हमारे लिए श्रेष्ठ कानून है लेकिन ईश्वरका कानून सबसे श्रेष्ठ है इसलिए किसी प्रकारकी गड़बड़ हो और अनाट हो जाय उसके लिए बापूने साफ बात बताई है। सत्याग्रह करनेका अधिकार किसका है? जो आदमी सत्य समझता है जो सत्यको हजम करता है, उसे ही ऐसा अधिकार है, वही सत्याग्रह कर सकता है।

दूसरी तरह कहें तो जो अपनेपर — शरीरपर कष्टोंको ले लेता है और दूसरोंको घबराकर डाँट डपटकर नहीं, लेकिन उसका हृदयपरिवर्तन करकर उसे समझाता है वही योग्य आदमी है। राज्यके सामने जब सत्याग्रह किया जाय तब जो सजा हो उसको स्वीकार करना चाहिये। राज्य सजा करता है यह फ़रियाद सत्याग्रही कर नहीं सकता जो कि भूतकालमें ऐसी फरियादें हुई हैं। लेकिन यह ठीक नहीं है। ऐसे सत्याग्रही बहुत कम हैं। स्वराज्य अहिंसासे प्राप्त हो सकता है यह बात ठीक है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि स्वतंत्रताकी रक्षा करनेके लिए हमलेका प्रतिकार न किया जाय। स्वतंत्रता खो दें तो क्या रहे? स्वतंत्रताको बचानेके लिए हमलेका प्रतिकार करना यह नीति है, अनीति नहीं। सच्ची स्वतंत्रता अहिंसासे ही प्राप्त कर सकते हैं और उसके लिए सत्याग्रह एक हथियार है। सत्याग्रहका हथियार स्वीकार कर लेनेके बाद हड़ताल करना ठीक नहीं। दूसरोंको समझानेके लिए, प्रेमसे समझानेकी कोशिश करनी चाहिये। फरियादके लिए सत्याग्रहका हथियार सत्याग्रह नहीं रहता, दुराग्रह बन जाता है। लोकतंत्र राजनीति की मुख्य नींव है। बापूने अहिंसाको अपनाया था। फिर भी वे यह मानते थे कि राज्य सिर्फ अहिंसक ही नहीं हो सकता। राज्य कानूनका पालन कराये — जबरदस्तीसे पालन कराये। क्योंकि वे कानून अधिक लोगोंके प्रतिनिधियोंके स्वीकार किये हुए सर्वमान्य कानून हैं। इसीलिए लोकतंत्रमें कानूनका पालन होना चाहिये। और उसका उल्लंघन करने पर जो सजा हो उसे स्वीकार करना चाहिये। यही नीति लोकतंत्रकी नींवमें है। कांग्रेस संघटनका विकास भी बापूने लोकतंत्र ढंगपर किया। कांग्रेसके लिए भी उन्होंने लोकतंत्र नीतिको स्वीकार किया।

कानून बनाने चाहिये। सच्चा कार्य करनेवालोंकी हिम्मत टूट जाय ऐसे क़ानून नहीं बनाने चाहिये। जैसे जैसे समाजकी सूझबूझ बढ़ती जायेगी वैसे वैसे कानूनका उपयोग नहीं रहेगा। जैसे जैसे समाज संगठित होता जायेगा, आदमीकी बुद्धि बढ़ती जायेगी वैसे वैसे कानूनकी जरूरत नहीं रहेगी।

(ता. २०–१०–६४ की प्रार्थनाके बादका प्रवचन)

●

परिशिष्ट

कुलपतिजीका आदेश

मुख्य मेहमान, बहनो और भाइयो,

मुख्य मेहमानने आजकी समस्याओंकी तरफ़ हमारा ध्यान खिचा है। ये समस्यायें आज ही की नहीं हैं वे तो हमें विरासतमें मिली हैं। सैकाओंके पतनके परिणामस्वरूप यह परिस्थिति पैदा हो गई है। लेकिन आज हम ज्यादा चिंतित हो गये हैं और यह ज़रूरी भी है। विकृतिका ख्याल नहीं आये तब तक उपाय सूझता नहीं। आज यह होश आया है यह अच्छी बात है। इसके बारेमें सब बात करते हैं और इसके इलाज भी खोजते हैं।

गूजरात विद्यापीठकी स्थापना बापूने की। इसके ध्येय भी उन्होंने निश्चित किये। इसके लिए योजना भी उन्होंने बनाई।

बापू एक ही क्षेत्रमें काम करनेवाले आदमी नहीं थे। वे युगपुरुष थे। जीवनके हरएक क्षेत्रके बारेमें वे सोचा करते थे। यहाँ आये तभी उन्होंने शिक्षाके बारेमें सोचा यह नहीं है। लेकिन आफ्रिकामें वे अपने जीवनको सत्याग्रहके लिए कस रहे थे तब ही शिक्षाके बारेमें उन्होंने अपने विचार प्रगट किये। हर एक सवालके बारेमें उन्होंने जड़मूलसे सोचा है और उसका इलाज भी बताया है। उसीसे उसका परिणाम स्वाभाविक तौरसे स्थिर और हमेशाके लिए टिकनेवाला हुआ है। यहाँ गूजरात विद्यापीठकी स्थापना करके उन्होंने गूजरातको जो अमूल्य भेंट दी है उसके बारेमें तो सब जानते ही हैं। स्वातंत्र्य युद्धमें गूजरात विद्यापीठने विद्यार्थियों, अध्यापकों, शिक्षकों, स्नातकों के द्वारा अपना हिस्सा दिया है। शायद ही दूसरी किसी शिक्षण संस्थाने आजादीकी

लड़ाईमें इसने भाग भी काम किया हो। जिस तरहसे उन्होंने नीति मर्यादा और विचारकी दिशा निश्चित की इसी कारण यह साधना सफल हो सकी। स्वराज्यके बाद गुजरात विद्यापीठने अपना काम ग्रामाभिमुख सिखानेवाले विद्यालयसे शुरू किया। पिछले साल जब श्रीमालीजी केन्द्रमें शिक्षामंत्री थे तभी उन्होंने विद्यापीठको दूसरी युनिवर्सिटियोंके समकक्ष माननेका काम शुरू किया था। उन्होंने पहले कहा कि गुजरात विद्यापीठ इस तरहकी मांग करे तो अच्छा है। ऐसी मांगकी पहल थी और वह की। मुझे तो याद भी आता नहीं कि यदि श्रीमालीजी शिक्षामंत्री न होते तो विद्यापीठके ध्येय स्वीकार किये जाते। ग्रान्ट भले न मिल सकता है मगर स्वीकार नहीं कर सकता। स्वीकार करना या न करना यह अपने हाथकी बात है। युनिवर्सिटी ग्रान्ट्स कमीशनने कुछ सूचनाएं की थीं माध्यमके बारेमें, ग्रान्टके नियमोंके बारेमें, मंडलके बारेमें। लेकिन ये सब सूचनाएं ऐसी थीं कि जिनसे विद्यापीठके ध्येय उलटपलट हो जाते थे। जिस कामके लिए विद्यापीठ शुरू किया गया, और जो काम भविष्यमें करना है वह बेकार हो जाता। इसलिए श्रीमालीजीसे कहा गया कि इन शर्तोंको स्वीकार नहीं किया जा सकता। और यदि सरकार सूचनाओंमें फर्क करनेके लिए तैयार नहीं है तो यह बात छोड़ दीजिये। हमें इसका रंज नहीं। लेकिन हमें ऐसी परिस्थितिमें रखनेसे न राज्यका फायदा है, न हमारा। हम अपनी मांग छोड़नेके लिए तैयार थे। लेकिन उनको विद्यापीठकी स्थापनाका पूरा खयाल था। उसके ध्येय और आदर्शोंके साथ वे सहमत थे और हैं। विद्यापीठकी तरहकी और भी संस्थाएं हो जायें और दूसरे लोग उसका अनुकरण करें यह वे चाहते थे। . . . इस तरहसे विद्यापीठको मान्यता मिली। इसके बाद युनिवर्सिटी ग्रान्ट्स कमीशनके अध्यक्ष यहां हो गये। उन्हें विश्वास हो गया कि किसी तरहका फेर न करनेकी विद्यापीठकी जो मांग थी, वह ठीक है।

आज सवाल यह है कि वातावरण चाहे जैसा धुंधला हो लेकिन उसमें फँसे बगैर अपने आदर्शोंपर क़ायम रहना चाहिये। विद्यापीठने यह बात साफ़ कर रखी है कि आदर्शोंको पूरा करनेके लिए जो कीमत

रहे। तभी सत्ताके हस्तक्षेपसे शिक्षा मुक्त रह सकती है। यदि शिक्षाके काममें किसी तरहसे राज्यका हस्तक्षेप न हो तो ही शिक्षाका सच्चा स्व रूप बनाया जा सकता है। राज्यके दृष्टिकोणमें जैसे जैसे फेर होता जायेगा वैसे वैसे शिक्षाक्षेत्रमें ज्यादा स्वतन्त्रता आती जायेगी। जिस तरह विद्यापीठ किसी भी तरह अपने आदर्शों और ध्येयों पर जमा रहना चाहता है उसी तरह हर एक संस्थाको अपने आदर्शोंपर जमे रहना चाहिये।

शिक्षकोंको तालीम देनेका काम विद्यापीठ करे इस बातपर सोचा जा रहा है। वह तालीम प्राथमिक कक्षाके शिक्षकोंसे लेकर उच्च कक्षाके शिक्षकोंके लिए होनी चाहिये। शिक्षा यह अश्वत्थ वृक्षकी तरह है। गीतामें कहा है वैसा है —

ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्त वेद स वेदवित्।।

उसकी जड़ें ऊपर, और शाखाएँ और पत्ते नीचे।

युनिवर्सिटीमें जैसा वातावरण होता है वह सब जगह पहुँच जाता है। प्राथमिक शालाके शिक्षक युनिवर्सिटीमें गये हुए नहीं होते; लेकिन उन्हें तालीम देनेवाले तो युनिवर्सिटीमें पढ़े हुए शिक्षक ही होते हैं। इससे युनिवर्सिटीकी जिम्मेदारी बढ़ जाती है। उस जिम्मेदारीको अधिक से अधिक समझ लेनेकी जरूरत है। जो स्नातक यहाँसे हर साल निकलते हैं और अब तो अनुस्नातक भी निकलने लगेंगे वे सब विद्यापीठकी इस जिम्मेवारीको अपनी समझें और अपने जीवनसे विद्यापीठका संदेश जहाँ जायें ले जायें तो इससे विद्यापीठका काम अधिकसे अधिक अच्छी-तरहसे पूरा होगा।

ईश्वर इस धर्मको समझने और इसपर चलनेके लिए शक्ति और बुद्धि दे।

(ता० १८–१०–६४ के पदवीदान समारोहपर कुलपतिका आदेश)